अथ श्रीउत्तरगीताप्रा०

ज्ञान हो कि कुरुक्षेत्र जो धर्म का क्षेत्र था उसमें श्रीमद्भगवान् नारायण ने अर्जुन को जो आत्मतत्त्वोपदेश किया था उसको अर्जुन ने राजभोगासक्त चित्त होकर भूल गये और कुछ दिन पीछे जब फिर चैतन्य हुए तो श्रीकृष्णचन्द्र से प्रार्थना करके जिज्ञासित हुये कि हे केशव जिस ज्ञान के प्राप्ति होने से जीव को उसी समय मुक्तिपद मिल जाता है उसी आत्मतत्त्वज्ञान का उपदेश स्वरूपलक्षण और तटस्थलक्षण के द्वारा हमको जो तुम्हारी शरणागत हुये हैं उपदेश करो यह प्रार्थना करके अर्जुन श्रीकृष्णभगवान से प्रश्न करते भये ॥ ॥ ॥

यदेकं निष्कलं ब्रह्म व्योमातीतं निरञ्जनम्।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं विनाशोत्पत्तिवर्जितम् १
कैवल्यं केवलं शान्तं शुद्धमत्यन्तनिर्मलम् ॥
कारणं योगनिर्मुक्तं हेतुसाधनवर्जितम् ॥ २ ॥
हृदयाम्बुजमध्यस्थं ज्ञानज्ञेयस्वरूपकम्।
तत्क्षणादेव मुच्येत यज्ज्ञानाद्ब्रूहि केशव ३

जो एक अर्थात् स्वजातिभेदरहित और निष्कल अर्थात् निराकार और आकाशवो वायुवो अग्निवो जलवो पृथ्वी और शब्दवो स्पर्शवो रूपवो रसवो गन्धवो श्रोत्रवो त्वकवो चक्षुवो जिह्वावो नासिकावो वाकवो पाणिवो पायुवो पादवो उपस्थवो प्रकृतिवो मनवो बुद्धिवो अहंकार इन चौवीस तत्त्वों से

अतीत और निरंजन अर्थात् स्वप्रकाश और अप्रतर्क्य अर्थात् मनोगोचर है और श्रुति से भी यह स्पष्ट होता है कि (यन्मनसा नमनुते) अर्थात् मन से भी जाना नहीं जाता और जो अविज्ञेय अर्थात् प्रमाणाविषय है इससे भी श्रुति का प्रमाण है (यद्वाचा नमनुते यतो वाचो निवर्तन्ते) अर्थात् वाचा और मन दोनो उसतक नहीं पहुंच सक्ते, इस निमित्त इस्से भी निरुक्त है और जो विनाशोत्पत्तिवर्जित, अर्थात् त्रैकालिक और कैवल्यस्वरूप अर्थात् मुक्तिस्वरूप और शान्त वो शुद्ध वो अत्यन्त निर्मल और योगनिर्मुक्त अर्थात् वस्त्वन्तर और सम्बन्धरहित होकर भी जगत के निमित्त उपादान कारण है किन्तु वह नित्यत्व हेतुक जगदुत्पत्ति के हेतुत्वातिरिक्त और साधनवर्जित है और लोक के नियामकत्व हेतुक सर्वजीव के हृदयकमल में वास करता है और ज्ञान अर्थात् विषयप्रकाश और ज्ञेय अर्थात् विषय इस प्रकार का सत्वात्मक है सो हे केशव इस प्रकार का जो परमात्मा है उसका विशेष लक्षण के द्वारा हमको उपदेश करो श्रीकृष्णचंद्र अर्जुन को यह बात सुनकर कहने लगे ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ॥

साधु पृष्टम्महाबाहो बुद्धिमानसि पाण्डव ॥
यन्मां पृच्छसि तत्वार्थमशेषन्तद्वदाम्यहम् ४

हे महावाहो और पांडुकुलचूडामणि तुमारा यह साधुता का प्रश्न सुनकर के हम अतिशय अल्हादित हुये क्यौं कि तुम सुबुद्धिमान हो इस निमित्त हम तुमको उसी आत्मतत्व का अर्थ विशेषरूप से कहते हैं सावधान होकर चित्त लगाकर सुनो ॥ ४ ॥

आत्ममन्त्रस्य हंसस्य परस्यारसमन्वयात् ॥
योगेन गतकामानां भावना ब्रह्म उच्यते ॥ ५ ॥

आत्ममन्त्र अर्थात् प्रणवात्मक जो मन्त्र है उस मन्त्र की तातपर्य

विषयजोहंसअर्थातपरमात्माहैउसकोइसप्रणवात्मकमंत्र
केसहितप्रतिपाद्यऔरप्रतिपादकभावसंसर्गहेतुकजिसनेआ
त्मतत्वविचारकेअर्थयोगकेद्वाराकामादिषडवर्गकेअरिको
जयकरलियाहैउनकीजोभावनाअर्थात तत्वमसीहैऔरइ
समहावाक्यकेजाननेसेजोचर्मवृत्तिहोतीहैउसवृत्तिकेद्वाराजो
अविद्याकीनिवृत्तिहैवहीब्रह्मकहलाताहै॥ ॥ ५ ॥ ॥

शरीरिनामजस्यान्तं हंसतत्वंपारदर्शनम् ॥
हंसोहंसाक्षरश्चैतत्कटस्थंयत्तदक्षरम् ॥
यद्विद्वानक्षरंप्राप्य जह्यान्मरणजन्मनी ६

जीवकीअवधिभूतहंसत्वअर्थात् परमब्रह्मस्वरूपत्वहैजिस
कोसमस्तलोगज्ञानकहतेहैंऔरहंसअर्थात्ब्रह्मऔरप्रणव
अर्थात्जीवइनदोनोकासाक्षीभूतजोहैसोईअक्षरकहलाता
हैनिदानजबजीवकोत्रिविधपरिच्छेदहोनेसेयहस्पष्टरूपसेदि
खलाईदेनेलगताहैतोवहीअक्षरवस्तु,विवेकीविद्वानऔरसा
धुहैऔरजिसनेअक्षरवस्तु,कोप्राप्तकियाउसीनेजन्ममरणरूपी
संसारकोभीत्यागकिया॥ ॥ ६ ॥ ॥ ॥

काकीमुखककारान्तो ह्यकारश्चेतनाकृतिः
अकारस्यचलुप्तस्य कोहन्वर्थःप्रतिपद्यते ७

ककाशब्दार्थहैसुखऔरअकाशब्दार्थहैदुखइनदोनोके
सहनकरनेवालोंकोकाकीअर्थात्जीवकहतेहैंऔरइसका
कीशब्दकेआदिमेंजोककारहैऔरउसकेअन्तमेंजोअका
रहैउसीअकारकोजीवाकारकीनाईब्रह्मकाबतलानेवालाजा
नोअर्थात्इसअकारकोब्रह्मकाचेतनाकृतिप्रकृतिकामूलजा
नोऔरजबअकारकालोपहोजायतोकेवलककारवर्णमात्ररह
जाताहैऔरवहीअखण्ड और अद्वितीयऔरमहानन्दस्वरू

पार्थ्यब्रह्म है इसी प्रकार से जीवन्मुक्त पुरुष को प्रतिपाद्य होता है (इति श्लोकार्थः) और यह ब्रह्माण्ड जो ककार के अन्त का अकार अर्थात मूलप्रकृति है और उस मूलप्रकृति का प्रतिपाद्य जो ब्रह्म है सो ई ब्रह्म तुम हो इस हेतु अकार का अर्थ जो मूलप्रकृति है उसके लुप्त होने से अकार का जो अर्थ जो चिदानंदमय है केवल वही चिदानन्दमय रह जाता है इसी प्रकार के निरूपण करने से वह प्राप्ति होता है ॥ ७ ॥ ७ ॥

गच्छन्स्तिष्ठन्सदाकालं वायुस्वीकरणम्परम्
सर्वकालप्रयोगेन सहस्रायुर्भवेन्नरः ॥ ८ ॥

जो कोई गमनकाल और स्थितकाल मे अर्थात् सर्वदा विशेषरूप से प्राणायाम अर्थात् स्वास और परस्वास को शरीर के मध्य धारण करने में दृढ़ होगया है उसी मनुष्य की सहस्र वर्ष की आयुर्बल होजाती है ॥ ८ ॥ ७ ॥ ॥

यावत्पश्येत्खगाकारं तदाकारं विचिन्तये
खमध्ये कुरु चात्मानं मात्ममध्ये च खं कुरु ।
आत्मानं खमयं कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ९

खगाकार अर्थात् हंसरूप ब्रह्म को साक्षात्कार करना चाहै तबतक ब्रह्म को तदाकाररूप से चिन्ता करता रहै अर्थात् हंसरूपी ब्रह्म की भावना करता रहै और उसके अन्तर में पश्चात् इस प्रकार से तद्रूपात्मा साक्षात्कारार्थ आत्मा और जगत में अभेद ध्यान करता रहै तिदानन्तर खमध्ये अर्थात सुषुम्ना नाड़ी में मध्यवर्ती जो चित्रिणी नाड़ी है सो उस नाड़ी के मध्य में आत्मा को स्थापन करो अर्थात आत्मा का सत्तारूपी से भावना करना और आत्मा के बीच अर्थात परमात्मा मे आकाश की भावना करना और साधक को उचित है कि आत्मा को खमय अर्थात

आकाशमय अथवा जीवमय जानकर जीवात्मा और परमा
त्मा इन दोनों में अभेद जानकर सर्व चिंता का विसर्जन करे ९

स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद्ब्रह्मणि स्थिता।
वहिर्व्योमि स्थितं नित्यं नासाग्रे च व्यवस्थितं
निष्कलं तं विजानीयात् स्वासो यत्र लयं गतः१०

ब्रह्मवित पूर्वोक्त प्रकार से योग को धारण करके ब्रह्मज्ञानी हो
कर निश्चल ज्ञानावलम्बन द्वारा अज्ञान रहित होकर सदा ब्र
ह्मनिष्ठ होते हैं और जिसमें स्वास वायु लय को प्राप्त होती है उसी
नासिका के अग्रभाग में जो वहिराकाश व्यवस्थित है सो उसी आ
काश में ब्रह्म को जानना चाहिये॥ १० ॥ ७ ॥

पुटद्वयविनिर्मुक्तो वायुर्यत्र विलीयते ॥
तत्र संस्थं मनः कृत्वा तं ध्यायेत्पार्थ ईश्वरम्११

स्वास वायु नासिका के दोनों रंध्र से जब निर्गत होय तो जिस पथ से
स्वास वायु लय को प्राप्त हुई होय उसी मार्ग में मन को स्थापन कर
के परमपरात पर ईश्वर को वक्ष्यमान प्रकार से ध्यान करै तो म
न की निश्चलता प्राप्त हो जाय॥ ११ ॥ ७ ॥

निर्मलं तं विजानीयात् षडूर्मिरहितं शिवम्।
प्रभाशून्यं मनःशून्यं बुद्धिशून्यं निरामयम्१२

उस ज्योतिर्मय परमात्मा को षडूर्मिरहित अर्थात् शङ्कल्प विक
ल्पादिरहित और मङ्गलस्वरूप और निर्मल अर्थात् चैतन्या
त्मक जानकर ध्यान करना किन्तु वह परमात्मा प्रभाशून्य मनः
शून्य अर्थात् मनोमलरहित है इसी निमित्त से बुद्धिशून्य अर्थात्
आशक्तिरहित और निरामय अर्थात् निर्व्याज होते हैं॥ १२॥

सर्वशून्यं निराभासं समाधिस्तस्य लक्षणम्।

निर्भूलयं यो विजानीयात् स तमुच्येत बन्धनात् ॥१३

निराभास अर्थात भ्रमरहित और सर्वशून्य अर्थात् स्वविनिरिक्त वस्तु को मिथ्या जानकर आनन्दैकरस जो ब्रह्म है उसी के ध्यान को समाधि कहते हैं और जो पुरुष इस प्रकार का समाधिस्थ हुआ वह संसार बन्धन से मुक्त हुआ यही समाधि का लक्षण है ॥१३

स्वयमुच्चलिते देहे देही न्यस्तसमाधिना ॥
निश्चलं तं विजानीयात् समाधिस्थस्य लक्षणं ॥१४

इस पंचभूतात्मक शरीर के स्वयं अर्थात् अनादि प्रारब्ध कर्म हेतुक होने और गमनादि क्रिया होने पर देही अर्थात जीव निश्चल समाधियोग के द्वारा निश्चलरूप से परमात्मा को जानता है और यही जानना समाधि स्थित अर्थात् आत्मयोग स्थित पुरुष का लक्षण है ॥ १४ ॥ ७ ॥

अमात्रं शब्दरहितं स्वरव्यञ्जनवर्जितम् ।
बिन्दुनादकलातीतं यस्तं वेद स वेदवित् ॥१५

जिसने आत्मा को मात्रारहित अर्थात ह्रस्व दीर्घ प्लुतादि रहितादि रहित और स्वरव्यञ्जनात्मक पञ्चाशत वर्णातीत और बिन्दु अर्थात अनुस्वार वो नाद अर्थात् गलविवरोद्भूत ध्वनि और कला अर्थात् नाद के कदेश उन तीनों से अतीत जाना उसी ने सर्व वेदान्त के तात्पर्य को जाना ॥ १५ ॥ ७ ॥

प्राप्ते ज्ञानेन विज्ञाने ज्ञेयं च हृदि संस्थिते ॥
लब्धशान्तिपदे देहे न योगो नैव धारणम् ॥१६

ज्ञान अर्थात सद्गुरु उपदेश द्वारा विज्ञान की उत्पत्ति होती है और विज्ञान अर्थात अनुभवात्मक ज्ञान के द्वारा ज्ञेय का लाभ होता है और ज्ञेय अर्थात सर्ववेदान्त तात्पर्यगोचर जो सच्चिदात्मा है सोउ

समस्चिदात्माके हृदयमें पद्मासीन होनेसे और देहमें शान्ति पद लाभ होनेसे योगाभ्यास और प्राणादि धारणा भी नहीं रहती जैसे फल सिद्ध होनेसे उसके कारणका कुछ प्रयोजन नहीं रहता १६

योवेदादौस्वरः प्रोक्तो वेदान्ते च प्रतिष्ठितः ॥
तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परः समहेश्वरः १७

वेदके आदि और मध्य और अन्तमें ओङ्कारात्मक जो स्वर उक्त हुआ है उस प्रकृतिलीन प्रणवके परे वाक्चतुष्टय शब्द बोधक जो हुआ सोई महेश्वर हुआ अर्थात् सोई आत्मतत्त्वज्ञानी है इसके व्यतिरिक्त और कोई नहीं है ॥ १७ ॥ ७ ॥
आत्मतत्त्वापरोक्षज्ञानके अनुभव होनेके प्रथम जो जो साधना करनेके योग्य है और ज्ञानलाभ होनेपर फिर जो साधनाकी आवश्यकता नहीं रहती सो पहस बदृष्टान्तके द्वारा प्रगट करते हैं ॥ ९ ।

नावर्थी ही भवेत्तावत् यावत्पारन्न गच्छति ॥
उत्तीर्णे तु सरित्पारे नावका किम्प्रयोजनम् १८

मनुष्य जबतक नदी पार नहीं होता तबतक नावार्थी होता है किन्तु जब नदी पार होजाता है तो नौकाका कुछ प्रयोजन नहीं रहता इसी प्रकार जबतक आत्मतत्त्वापरोक्षानुभव नही होता तभी तक योगाभ्यास और प्राणायाम धारणादि में यत्न करना चाहिये और जब परमात्मा साक्षात्कार होजाय तो योग धारणादिका कुछ प्रयोजन नहीं रहता ॥ १८ ॥ ७ ॥

ग्रन्थमभ्यस्य मेधावी ज्ञानविज्ञानतत्परः ॥
पलालमिव धान्यार्थी त्यजेत् ग्रन्थमशेषतः १९

मेधावी अर्थात् बुद्धिमान लोग वेदान्तादि नाना ग्रन्थोंका अभ्यास करके सामान्य ज्ञान और विशेषानुभव ज्ञानमें तत्पर होक

रसमस्त ग्रंथको त्याग करते हैं जैसे धान्यार्थी व्यक्ति वाले धान्य को तृणसहित ग्रहण करके पश्चात तृणगत समस्त धान्य को ग्रहण करके तृण को त्याग कर देते हैं उसी प्रकार ज्ञान और विज्ञाना र्थी पुरुष ज्ञान और विज्ञान को धान्यरूप और ग्रंथादि को तृण समान बोध करके ग्रंथराशि को त्याग कर देते हैं॥ १९ ॥

उल्काहस्तोयथाकश्चित् द्रव्यमालोक्यतांत्यजेत्
ज्ञानेनज्ञेयमालोक्यज्ञानम्पश्चात्परित्यजेत् २०

जैसे अंधकारमध्यस्थित पुरुष द्रव्य के अवलोकन करने के अर्थ दीपक को हस्त में लेता है परन्तु जब द्रव्य का अवलोकन कर लेता है तो दीपक को हस्त से त्याग कर देता है उसी प्रकार अविद्यान्धकारी पुरुष ब्रह्मदर्शनाभिलाषी साधु ज्ञानरूपी उल्का की द्वारा सच्चिदात्मा को अवलोकन करके तत्पश्चात् ज्ञान अर्थात् ज्ञान की साधना को परित्याग करते हैं॥ २० ॥

यथामृतेनतृप्तस्य पयसाकिम्प्रयोजनम् ॥
एवन्तम्परमंज्ञात्वा वेदेनास्तिप्रयोजनम् २१

जैसे जो पुरुष अमृतपान करके तृप्त हुआ है उसको दुग्धपान करने का कुछ प्रयोजन नहीं रहता उसी प्रकार परमपदार्थ ब्रह्म के जानने से वेदादि का कुछ प्रयोजन नहीं रहता॥
तत्वज्ञानियों को विधिनिषेधादि कर्तव्याकर्तव्य कुछ भी नहीं है इसी का उपदेश श्रीभगवान अर्जुन को करते हैं॥ २१ ॥

ज्ञानामृतेनतृप्तस्य कृतकृत्यस्ययोगिनः ॥
नचास्तिकिञ्चित्कर्तव्यमस्तिचेन्नसतत्ववित् २२

जो ज्ञानामृत करके तृप्त हुआ है और जिसने ब्रह्म को साक्षात्कार किया है उस आत्मतत्वयोगी को कोई विधि और कुछ नि

षेधनहीं है वह केवल लोक के संग्रहार्थ कोई २ विशेषकर्मानुष्ठा नकरता है और जो कोई अभिलाषापूर्वक विधिनिषेधादिक कर्मानुष्ठानकरता है वह तत्वज्ञ नहीं है ॥ हे भाइयो तत्वज्ञ कहलाने के निमित्त ब्रह्मप्राप्ति होने के प्रथम ही करम को कदापि मत त्यागो नहीं तो दोषभागी होगे और कदापि ब्रह्म की प्राप्ति नहीं होगी ॥ २३ ॥ २३ ॥ ॐ ॥ ॐ ॥

तैलधारामिवाच्छिन्नं दीर्घघण्टानिनादवत्
अवाच्यम्प्रणवस्याग्रं यस्तं वेद स वेदवित् २३

वेद का अर्थ जाने विना केवल वेदपाठ से वेदज्ञ नहीं होता किन्तु वेद का अर्थ और वेद का तात्पर्य जो ब्रह्मज्ञान है उसके जानने से वेदज्ञ कहलाता है और जिसने तैलधारा और दीर्घघण्टा के नाद की नाईं जो विच्छेद रहित और अवाच्य है उसके और प्रणव के द्वारा ब्रह्म को जाना वही वेदज्ञ है ॥ २३ ॥ ॐ ॥

आत्मानमरणिं कृत्वा प्रणवन्चोत्तरारणिम्
ध्याननिर्मथनाभ्यासा देवम्पश्येन्निगूढवत् २४

जिसने जीवात्मा को अरणी के काष्ठ की भावना किया और प्रणव को अपर अरणी काष्ठमय जानकर ध्यानरूपी मंथन और पुन्य के द्वारा अपना पाण्डित्याहंकार रहित होकर अवस्थित किया है उसीने ब्रह्माग्नि का दर्शन किया ॥ २४ ॥ ॐ ॥

तादृशं परमं रूपं स्मरेत्पार्थह्यनन्यधी ॥ ॥
विधुमाग्निनिभं देवं पश्येदत्यन्तनिर्मलम् २५

हे अर्जुन विधुमाग्नि दीप्तिमान अत्यन्त निर्मल और स्वप्रकाश परमात्मा का जब दर्शन हो जाय तो उसी प्रकार का उत्कृष्ट रूप और समयों में भी स्मर्ण करना चाहिये ॥ २५ ॥ ॥

दूरस्थोऽपि न दूरस्थः पिण्डस्थः पिण्डवर्जितः
विमलः सर्वदा देही सर्वव्यापी निरंजनः २६

देही अर्थात् जीवात्मा सर्वदा परमात्मा से दूरस्थ हो करके भी उ
सके संवन्धसे दूरवर्ती नहीं है और शरीरस्थ होकरके भी शरीरा
ध्यास रहित है इस कारण परमात्मा विमल और सर्वव्यापी औ
र स्वप्रकाश है इसप्रकारसे परमात्माकी भावना करना ॥ २६ ॥

कायस्थोऽपि न कायस्थः कायस्थोऽपि न जायते
कायस्थोऽपि न भुंजानः कायस्थोऽपि न वध्यते २७

देही अर्थात् जीव शरीराध्यासवान होने पर भी शरीरके निमित्त
बन्ध रहित है और भोगसाधन होने से भी भोगादि रहित है और ज
न्मादिमत शरीरस्थ होने पर भी जायमान नहीं है और बन्धहेतु
भूत देहहो करके भी संसार के बन्धन में बद्ध नहीं है ॥ २७ ॥

तिलमध्ये यथा तैलं क्षीरमध्ये यथा घृतम् ॥
पुष्पमध्ये यथा गन्धः फलमध्ये यथा रसः ॥
काष्ठाग्निवत्प्रकाशेत आकाशे वायुवच्चरेत् २८

जैसे तिलमें से निर्मल तैल और दुग्धमें से पवित्र घृत और पुष्पमें से
सुगन्ध प्राप्ति होती है और फलमें से सुस्वादरसका ज्ञान होता है
और जैसे आकाशसे वायु सर्वगामी होता है और वनमध्ये काष्ठ
के संयोगद्वारा उसमें से अग्नि उत्पन्न होकर समस्त आरण्यको
दग्ध करती हुई स्वयं प्रज्वलित रहती है उसी प्रकार यह आत्मा
पञ्चकोषात्मक देहस्थ होकरके भी सम्पूर्ण देहाध्यासको त्याग
करके स्वप्रकाशवान रहता है ॥ २८ ॥ ७ ॥

यथा सर्वगतो देही देहमध्ये व्यवस्थितः ॥
मनःस्थो देहिनां देवो मनोमध्ये व्यवस्थितः २९

जैसेसमस्ततिलमध्येंतैलएकरूपकानिकलताहैउसीप्रका रजीवनानादेहान्तरगतहोकरकेभीएकत्वरूपसेस्थितहै औरनिखिलशरीरमध्येमनःस्थजोईश्वरहैसोईसमस्तमनों केबीचसाक्षीस्वरूपअवस्थितिकरकेदीप्तिमानहै ॥ २९ ॥

मनस्थंमनमध्यस्थं मनस्थंमनवर्जितम्
मनसामनआलोक्य स्वयंसिध्यन्तियोगिनः ३०

मनोवच्छिन्नऔरमनसाक्षीभूतऔरसङ्कल्पविकल्पादिरहि तऔरअन्तःकरणकाअवरोधात्मकजोसम्विदात्माहैउसको योगीलोगअपनेअन्तःकरणकेद्वाराअवलोकनकरकेस्व यंमुक्तहोजातेहैं॥पूर्वोक्तस्वतःसिद्धसमाधिस्थयोगियोंकाल क्षणवर्णनकरतेहैं॥ ३० ॥ ७ ॥ ॥

आकाशंमानसंकृत्वा मनःकृत्वानिरास्पदम्
निश्चलंतंविजानीयात्समाधिस्थस्यलक्षणं३१

जिसनेअन्तःकरणकोआकाशकीनाईनिर्मलऔरसर्वविषय वासनासेअपनेमनकोनिःसङ्गकियाहैउसीनेनिश्चलऔर निष्कृयसम्विदात्माकोजानाहैऔरवहीसमाधिस्थहै॥ ३१ ॥
समाधियोगरोणाभिलाषियोंकाउपाय॥ ७ ॥

योगामृतरसंपीत्वा वायुभक्ष्यःसदासुखी॥
यंसमभ्यस्यतेनित्यं समाधिमृत्युनाशकृत्३२

जोयमादिअष्टाङ्गयोगअर्थात्नियमआसन,प्राणायाम,प्रत्याहा र,ध्यान,धारणा,यमऔरधृतिइनअष्टप्रकारकेयोगरूपअमृत- कोपानकरतेहैंऔरवायुमात्रकाअहारकरकेसदासुखीऔरसर्व दासन्तुष्टरहतेहैंऔरमनकेनिग्रहकरनेकाअभ्यासनित्यहीकर ते रहतेहैंवहीमनकोनिग्रहकरनेवालापुरुषजन्ममरणादिरू

पसंसारकोविनाशकरतेहैं और उसीपुरुषकोसमाधिस्थकहना चाहिये॥ ३२ ॥ ॥ ३२ ॥

उर्द्ध्वशून्यंमधःशून्यंमध्यशून्यंयदात्मकम्
सर्वशून्यंसआत्मेतिसमाधिस्थस्यलक्षणम् ३३

उर्ध्वऔरअधोऔरमध्यदेशऔरदेशकालादिपरिच्छेदरहितजिसस्वरूपकाआत्माहैउसीस्वरूपकीभावनाजिसकीहैवहीसमाधिस्थहैऔरइसप्रकारकीआत्माकीभावनाहीकोनिरालम्बसमाधिकालक्षणजाननाचाहिये॥ ३३ ॥

शून्यभावितभावात्मापुण्यपापैःप्रमुच्यते ३४

योगियोंकोपरमात्माकेव्यतिरिक्तऔरकिसीकीभावनानहींरहतीइसीकारणवेपुण्यपापअर्थात्विधिनिषेधादिसेमुक्तरहतेहैं॥ ३४ ॥ ॥

अर्जुनउवाच॥

अदृश्येभावनानास्ति दृश्यमेतद्विनश्यती॥
अवर्णमीश्वरंब्रह्मकथंध्यायन्तियोगिनः३५

हेभगवन्अदृश्यवस्तुकीभावनाअसंभवहैऔरदृश्यमानजोजगदादिहैंवहनाशहोनेवालेहैंतोयोगियोंकोरूपादिरहितऔरशब्दादिगोचरजोजगदात्माहैउसकाकिसप्रकारसेध्यानकरतेहैंआपकृपाकरकेहमकोइसकाउपदेशकरो॥ ३५॥

श्रीभगवानउवाच

ऊर्ध्वपूर्णमधःपूर्णंमध्यपूर्णंयदात्मकम्॥
सर्वपूर्णंसआत्मेतीसमाधिस्थस्यलक्षणम् ३६

जोऊर्ध्वदेशऔरअधोऔरमध्यदेशअर्थात्सर्वत्रपरिपूर्णहै

सोईआत्माहै औरजोआत्माका अदृश्यरूपसे ध्यानकरताहै वहीसमाधिस्थहोताहै औरइसप्रकारकीजो आत्मभावनाहै सोईसालम्बसमाधिकहलाती है ॥ ३६ ॥ ७ ॥

अर्जुनउवाच

सालम्बस्याप्यनित्यत्वं निरालम्बस्य शून्यता
उभयोरपि दोषित्वात् कथन्ध्यायन्तियोगिनः ३७

हे मधुसूदन आत्मायदिसाकारहै तोवह अनित्यहुआ औरय-दिनिराकारहै तोवह शून्यहुआ तोयोगीलोगउसकाकिसरूप से ध्यानकरतेहैं हमारेइससंदेहकोदूरकरो ॥ ३७ ॥

श्रीभगवानउवाच

हृदयं निर्मलंकृत्वा चिन्तइत्वाह्यनामयम्।
अहमेकमिदंसर्वमितिपश्येत्परंसुखी ३८

हृदयकोनिर्मल अर्थात्ज्ञानविरोधीजोरागद्वेषादिहैं उनसेरहि-तकरके अनामयसच्चिदात्माकीभावनाकरके जिसने अपनेको चराचरब्रह्माण्डस्वरूपदेखावहीपरमसुखीहुआ औरउसीने सच्चिदात्माकोपहिचाना ॥ ३८ ॥ ७ ॥

अर्जुनउवाच

अक्षराणिसमात्राणि सर्वेविन्दुःसमाश्रिताः
विन्दुर्नादेनभिद्येत सनादःकेनभिद्यते ३९

अकारादिसंपूर्णअक्षरमात्राकेसहितविन्दुकेआश्रितहैं और वहविन्दुनादकेसमन्वितहै औरनादकलाके आधीनहैतोवह किसकेआश्रितहैहे कृष्णमहाराजइसकाहमकोउपदेशकरो ३९

श्रीभगवानउवाच

अनाहतस्य शब्दस्य तस्य शब्दस्ययोध्वनिः
ध्वनिरन्तरगतञ्ज्योतिः ज्योतिरन्तर्गतंमनः॥

उन्मनो विलयं याति तद्विष्णोः परमं पदम् ५०

परावस्थापन्न शब्द की नाद के अन्तरगत जो जोति है और उस जोति के अन्तरगत में जो मन है सो वह मन जो ब्रह्म में लय को प्राप्त होता है तो उसी लय के स्थान को विष्णु का परम पद जानो ॥ ५० ॥

ॐकार ध्वनिनादेन वायोःसंहरणान्तिकम्
निरालम्बं समुद्दिश्य यत्र नादो लयङ्गतः ५१

ॐकार ध्वन्यात्मक नाद के सहित वायु का रेचक और पूरक आदि क्रिया के द्वारा निरालम्ब होना अर्थात् निर्विशेष ब्रह्म को लक्ष्य करके ध्यान करना और उस ब्रह्म में जो ओंकार ध्वन्यात्मक नाद लय को प्राप्त होता है सो उसी लयात्मक स्थान को विष्णु का परम पद जानो ॥ ५१ ॥ ॥ अर्जुन उवाच ॥ ॥

भिन्ने पंचात्मके देहे गते पञ्च सु पञ्चधा ।
प्राणे विमुक्ते देहे तु धर्माधर्मौ क्व गच्छतः ५२

पञ्चभूतात्मक देह के नाश होने पर और पंचभूत और पंचभूत से मिला हुआ प्राणादि और पंचवायु से बनी हुई देह के मुक्त होने से धर्माधर्म अर्थात् उस देह से उपार्जित जो पाप और पुण्य हैं वह कहां स्थित होते हैं हे भगवान कृपा करके विस्तारपूर्वक इसका उपदेश हमको करो ॥ ५२ ॥ ७ ॥ ७ ॥

श्रीभगवानउवाच

धर्माधर्मौ मनश्चैव पञ्चभूतानि यानि च ॥
इन्द्रियाणि च पञ्चैव याश्चान्याः पञ्च देवताः
ताश्चैव मनसः सर्वे नित्यमेवाभिमानतः ॥
जीवेन सह गच्छन्ति यावत्तत्त्वं न विन्दति ५३

धर्माधर्म और मन और पृथिवी आदि पञ्चभूत और इन्द्रियाभि

मानीदिग्वातादि पंचदेवता अर्थात् दिक्‌वोवायुओअर्कवोवरु-
णओअश्विनीकुमारयहपाँचोजोअन्तरइन्द्रियोंकेद्वारानि-
त्याभिमानीहैंसोजवतकतत्त्वलाभनहींहोताजवतकयहसवजीवो
पाधिलिंगशरीरकेसहितगमनकरतेहैं॥ ४३ ॥ ॥

अर्जुनउवाच

स्थावरञ्जङ्गमञ्चैव यत्किञ्चित्सचराचरम्
जीवाजीवेन सिध्यन्ती सजीवः केन सिध्यती॥४४

अर्जुनजिज्ञासाकरतेहैंकिहेमहाराजस्थावरऔरजंगमजोस
चराचरजगज्ज्ञातवस्तुहैंउसमेंस्थूलदेहाभिमानीजोतेजसहै
वहदेहद्वाराविश्वाभिमानकोतोत्यागकरदेताहैपरन्तुवहजी
वतेजसाभिमानीकिकारणसेहोताहैइसकाउपदेशविस्तारपू
र्वकहमकोकरो॥ ४४ ॥ ॥ ॥

श्रीभगवानउवाच

मुखनासिकयोर्मध्ये प्राणःसञ्चरतेसदा।
आकाशःपिवतोप्राणं सजीवःकेनजीवती॥४५

श्रीभगवानकहतेहैंकिजवतकप्राणवायुमुखऔरनासिकाके
वीचअजपामंत्रकेद्वाराजोप्रत्येकरात्रीऔरदिवसमें२१६००
संख्याप्रमाणहुआहैगमनागमनकरतारहताहैतवतकआका
शवायुकोपानकरतारहताहैऔरउसीकालमेंजीवजीवत्वाधि
ष्ठाननिवृत्तिकेद्वाराब्रह्मभावकोप्राप्तहोताहैअर्थात्जीवत्व
ध्वंसहोकरकेब्रह्मत्वकोप्राप्तहोजाताहै॥ ४५ ॥ ॥

अर्जुनउवाच

ब्रह्माण्डव्यापितंव्योम व्योम्नाचावेष्ठितंजगत्
अन्तरवहिस्ततोव्योम कथंदेवोनिरञ्जनः॥४६

अर्जुनकहतेहैंकिहेभगवानआकाशजोसंपूर्णब्रह्मांडमेंव्यापि

तहै और जगत भी उसी में घेरा हुआ है निदान आकाश जगत के अन्तर बाह्य वर्ती हुआ है तो परमेश्वर जो ब्रह्मांडोपाधि विशिष्ट हुआ फिर वह कैसे निरंजन कहा जा सक्ता है॥ ४६ ॥ ॥

श्री भगवानउवाच

आकाशोह्यवकाशश्च आकाशव्यापितंयत्
आकाशस्य गुणः शब्दो निशब्दं ब्रह्म उच्यते ४७

श्री भगवान उपदेश करते हैं कि आकाश अर्थात् महाकाश और अवकाश अर्थात परिछिन्नाकाश यह दोनो आकाश तन्मात्र भूत शब्द के द्वारा व्याप्त हैं अर्थात् आकाश के उपादान कर्ता है तो उस्से अतिरिक्त और कुछ है इसी हेतु आकाश से शब्द होता है निदान जब शब्द गुण परिणामोपादान है तो वह मिथ्या सिद्ध हुआ किन्तु ब्रह्म निःशब्द है तु केवल सत्य और निरंजन सिद्ध हुआ है ४७

इन्द्रियाणांनिरोधेन देहे पश्यन्तिमानवाः॥
देहे नष्टे कुतो बुद्धिर्बुद्धिनाशे कुतोऽज्ञता ४८

योगीलोग इन्द्रियों के निरोध के द्वारा देह में आत्मा का दर्शन करते हैं इसी लिये शरीर की रक्षा करना ज्ञानोपार्जन की उपाय जानना - और इस देह के विनाश होने से ज्ञान नष्ट हो जाता है और ज्ञान के विनाश होने से ज्ञाता अर्थात् अपरोक्ष ज्ञानता किस प्रकार से हो सक्ती है

अर्जुनउवाच

दन्तोष्ठतालुजिह्वानामास्पदंयत्रदृश्यते
अक्षरत्वंकुतस्तेषां क्षरत्वंवर्ततेसदा ४९

अर्जुन कहते हैं कि हे भगवान यह समस्त लोग जो दन्त और ओष्ठ औ तालु और जिह्वा आदि को आश्रय करके उत्पन्न हुये हैं उनको क्षय रहित कैसे कह सक्ते हैं क्योंकि वे समस्त काल में नाश होने वाले हैं॥ ४९ ॥ ७ ॥ ७ ॥

श्रीभगवानउवाच

अघोषमव्यंजनमस्वरञ्च अतालुकण्ठोष्ठमना
सिकञ्च॥ अरेखजातंपरमूष्मवर्जितं तदक्षरंन
क्षरतेकथञ्चित॥ ५० ॥ ७ ॥

श्रीभगवानकहतेहैं कि हे अर्जुन घोषाख्य अर्थात् व्याकर्णसंज्ञा
केवर्णोच्चारणपर्यन्त नादादिभिन्न और व्यंजन वोस्वरव्यतिरि-
क्ति और इन अक्षरोंकेउच्चारणकेस्थान तालुवोओष्ठओकण्ठवो
नासिकाआदि अष्टप्रकारकेहैं उनकेसाध्यजे अरेखजात अर्थात
वर्णव्यंजकरेखासमूहातीत और उष्म वर्जित अर्थात श ष स ह का
रवतजो व्याकरणसंज्ञाके भिन्न जोब्रह्म है वह किसीप्रकारसे क्ष
यकोप्राप्ति नहीं होता हे पार्थ हम उसीपरमब्रह्म को अक्षरशब्द
करके कहते हैं किन्तु ककारादि अक्षरोंकी अक्षरत्वकोहमनहींक
हते अर्थात् यह कि अक्षरोंके व्यतिरिक्त जोब्रह्म है उसीब्रह्मकोअ
क्षर अर्थात क्षयरहितकहतेहैं॥ ५० ॥ ७ ॥

अर्जुनउवाच

ज्ञात्वासर्वगतंब्रह्म सर्वभूताधिवासितम्॥
इन्द्रियाणां निरोधेन कथंसिध्यन्तियोगिनः ५१

हे भगवानयोगीलोग इन्द्रियोंकोसंयमकेद्वाराउसब्रह्मकोजोस
र्वभूतोंमे अन्तर्यामित्वरूपसे स्थित और सर्वजीवोंके अन्तर्बाह्य
ह्यपरिपूर्ण है तद्रूपसे जानकर किसप्रकारसेमुक्त होजाता है उ
सकोविस्तारपूर्वकहमसेकहो॥ ५१ ॥ ७ ॥ ॥

श्रीभगवानउवाच

इन्द्रियाणांनिरोधेन देहेपश्यन्तिमानवाः॥
देहेनष्टेकुतोवुद्धि र्विद्धिनाशोकुतोज्ञता॥ ५२॥

श्रीभगवानकहतेहैं किहे अर्जुनयोगीलोगइन्द्रियोंके निरोधके द्वारा अपनीदेहहीमेंआत्मदर्शनकरतेहैं निदानशरीरत्वकानाशहीज्ञानकीउपायहै किन्तुउसदेहकेनष्टहोनेसेज्ञानकानाशहोजाताहै औरजबज्ञानकानाशहुआतोज्ञाना अर्थात् अपरोक्षानुभवज्ञानकिसप्रकारसेहोगा॥ ५२ ॥ ॐ ॥

तावदेवनिरोधः स्यात् यावत्तत्त्वन्नविन्दती ॥
विदितेचपरेतत्त्वे एकमेवानुपश्यती ॥ ५३ ॥

जबतक अपरोक्षज्ञानकालाभनहोयतबतक इन्द्रियोंकासंयमकरनाचाहिये औरजबइन्द्रियकेसंयमद्वाराअखण्डानन्दपरब्रह्मकोपाजावेतोकेवलउसीएकसच्चिदात्मामात्रकादर्शनकरनाचाहिये॥ ५३ ॥ ॐ ॥ ॐ ॥

नवछिद्रान्विता देहाः स्रुवन्ते जालिकाइव ॥
नैवब्रह्मन शुद्धस्यात् पुमान्ब्रह्मनविन्दती ५४

नवछिद्रयुक्तदेहजबतकयत्नद्वाराज्ञानकीअवलोचनाकरतीतबतक विषयवासनानहींजाती औरशुद्धभीनहींहोती और सुखदुःखाभिमानीजीवात्माभी आत्माकाअनुभवकरनेनहींसक्ता

अत्यन्तमलिनोदेहो देहीत्वत्यन्तनिर्मलः ॥
उभयोरन्तरम्मत्वा कस्यशौचविधीयते॥ ५५ ॥

जड़त्वहेतुकयहपंचभौतिकशरीरअतिमलीनहै औरदेही अर्थात् आत्माअहङ्कारोपाधिकसंसारसेरहितहोनेकाजोहेतुहै वहअत्यन्तनिर्मलहै निदानइनदोनोकेबीचजोअन्तरहैउसकेव्यतिरिक्तप्रतिशौचाशौचकीकोईविधिनहीं है क्यौंकि जड़रूपीशरीरकीशुद्धिकदापिनहीहोसक्ती किन्तुस्वतःशुद्धजोआत्माहैउसकीशौचादिकदापिहीननहीहोती अतएवकिसकीशुद्धिउचितहै विचारकरनाचाहिये॥ ५५ ॥

इतिब्रह्माण्डोक्तउत्तरगीतायाःसुबोधेअनुवादेप्रथमोध्यायःसमाप्तः

अर्जुनउवाच

ज्ञात्वासर्वगतंब्रह्म सर्वज्ञंपरमेश्वरम् ॥ ॥
अहंब्रह्मेतिनिर्दिष्टः प्रमाणंतत्रकिंभवेत् ॥ १ ॥

अर्जुनकहतेहैंकिहेभगवानउसपरंब्रह्मकोतत्वमसीआदिमहावाक्य
केविचारद्वारासर्वज्ञअर्थातसंपूर्णकासाक्षीस्वरूपऔरसर्वगतअर्था
तसर्वत्रपरिपूर्णजानकर अहंब्रह्मेतिअर्थात्हमीब्रह्महैंइसशब्द
काप्रतिपाद्यजोप्रतिविम्बितआत्माअर्थातजीवहैसोईब्रह्महुआतो
उसपरमात्माऔरजीवइनदोनोकेएकजाननेकाकारणक्याहैइस
केउपदेशसेहमकोकृतार्थकरो ॥ १ ॥ ७ ॥

श्रीभगवानउवाच

यथाजलेजलंक्षिप्तं क्षीरेक्षीरंघृतेघृतं ॥
अविशेषोभवेत्तत्वे जीवात्मपरमात्मनोः ॥ २ ॥

श्रीभगवानकहतेहैंकिजैसेगङ्गाजीसेघड़ेवोलोटेइत्यादिमेंजल
भरकरअलगरखदेवैंतोगङ्गाजीऔरघड़ेइत्यादिकेजलोंमेंभेद
प्राप्तहोजाताहैऔरउसीभेदोपाधियुक्तजलकोफिरगंगाजीमेंडा
लदेवैंतोवहजलअभेदताकोप्राप्तहोजावैगाइसीप्रकारसेदुग्धमें
दुग्धऔरघृतमेंघृतकीनाईजीवात्माअविद्योपाधिकोनाशकर
केपरमात्माकेसहितएकताकोप्राप्तहोजाताहै ॥ २ ॥ ॥

जीवेपरेणतादात्म्यं सर्वगंजोतिरीश्वरः ॥
प्रमाणलक्षणैर्ज्ञेयं स्वयमेकाग्रवेदिना ॥ ३ ॥

तत्वज्ञानाधिकारीऔरब्रह्मनिष्ठऔरशांतलोगसद्गुरुपदेशसाधना
केद्वारातत्वमसीवाक्यकीनाईसंपूर्णभूतजोउत्पन्नहुयेहैंउनकोसर्व
ज्ञवोसर्ववित्इत्यादिउपनिषदवाक्यविचारनेकेद्वाराजीवकोपरमा
त्माकेसहितएकवोधकरनेसेजोनिर्भयऔरचिदात्माऔरस्वयंप्रका
शमानहोजाताहै ॥ ३ ॥ ७ ॥ ॥

अर्जुनउवाच

ज्ञानेनैवभवेत्ज्ञेयं विदित्वातत्क्षणेनतु ॥
ज्ञानमात्रेणमुच्येत किंपुनर्योगधारणम् ॥ ४ ॥

अर्जुनकहतेहैं किहेभगवानज्ञेय अर्थातएकब्रह्मकाविचारजिसकि
सीकोगुरुपदेशज्ञानकेद्वारालाभहोजाय औरउसकेलाभहोनेहीमुक्ति
होजातीहैतोकर्मयोगाभ्यासकरनेकाप्रयोजनक्याहै॥ ४ ॥

श्रीभगवानउवाच

ज्ञानेनदीपितेदेहे बुद्धिर्ब्रह्मसमन्विता ॥ ॥
ब्रह्मज्ञानाग्निनाविद्वान्निर्दहेत्कर्मबन्धनम् ॥ ५ ॥

श्रीभगवानकहतेहैं किहेअर्जुनविद्वान अर्थातनित्यानित्यवस्तुवि
वेकीतत्वज्ञानकेद्वाराशरीरशुद्धहोनेसे और निश्चयात्मिकाजोबुद्धि
हैउसकोब्रह्ममेंसमाप्तिकरकेब्रह्मज्ञानाग्निकेद्वाराकर्मरूपीबन्धन
कोदग्धकरताहै।।तदुक्तंगीतायां (ज्ञानाग्निःसर्वकर्माणिभस्मसात्कु
रुतेऽर्जुन) हेअर्जुनज्ञानाग्निनिखिलकर्मकोभस्मकरदेतीहैअर्था
तयहकियावततत्वज्ञाननप्राप्तहोयतावतकालकर्मयोगाभ्यासकरना

ततःपवित्रंपरमेश्वराख्यमद्वैतरूपंविमलाम्बराभम्
यथोदकेतोयमनुप्रविष्टंतथात्मरूपोनिरुपाधिसंस्थितः६

उपाधिरहितजलकीनाईंजोपरमेश्वर और विमलाकाशकीनाईंअ
द्वैतअर्थातसंगरहितजोपरमात्माहैसोवहतत्वज्ञानकेउत्पन्नहोनेपर
उपाधिरहित और निष्करूपहोजाताहै अर्थातयहकितत्वकेप्राप्तहोने
सेफिरकिसीकर्मकेकरनेकीअवश्यक्तानहींरहती॥ ६ ॥

आकाशवत्सूक्ष्मशरीरात्मानदृश्यतेवायुवदन्तरात्मा
सबाह्यवाभ्यन्तरनिश्चलात्मा अन्तर्मुखःपश्यतितत्व
मेकम्॥ ७ ॥ ७ ॥ ॥

जिसप्रकारसे आत्मा आकाशकी नाईं सूक्ष्मशरीरी अर्थात अतीं द्रियहै और वायुकी नाईं चक्षु आदि इन्द्रियोंसे आदृश्यहै उसीप्रका रसे जीवात्माभी दिखलाई देताहै ॥ ७ ॥ ७ ॥

यत्रयत्रमृतोज्ञानी येनवाकेनमृत्युना ॥ ॥
यथासर्वगतं व्योम तत्रतत्रलयङ्गतः॥ ८ ॥

जैसे महाकाश जोसर्ववस्तु अवच्छिन्नहै सो अवच्छेदक वस्तुओंके नाश होनेसे वह महाकाशमें लयको प्राप्तहोजाताहै उसीप्रकारस र्वत्र परिपूर्णात्माका विशेषताभावसे जान्नेवाले पुरुष किसीप्रकार से किसीस्थानमेंमरै किन्तु वह उसीब्रह्ममें लयहोजाताहै इसीकारण तत्वज्ञानियोंको मृत्युकालमें देशकालादिकी अपेच्छाकुछनहीरहती

शरीरव्यापिचैतन्यं जाग्रदादिप्रभेदतः ॥
नत्वेकदेशवर्तित्व मन्वयव्यतिरेकतः॥ ९ ॥

एक जीव नानाप्रकारके शरीर होनेसे आपभी नाना प्रकारकाहो करसर्वव्यापी हुआहै और व्यापीजो चैतन्य अर्थात जीवहैसो जाग्रत और स्वप्न और सुषुप्ति इनतीनो अवस्थाओंके कारण ए कदेशवर्तीनिहोकरके सर्वत्रगामी होताहै ॥ ९ ॥ ॥

योगप्रकर्णप्रारम्भः॥

मुहूर्तमपियोगच्छेन्नासाग्रेमनसासह ॥
सर्वंतरतिपापानं तस्यजन्मशतार्जितम्॥१०॥

जिन्होंनेज्ञानसाधनके हेतु मनकोसंपूर्णपदार्थोंके सहितक्षण मात्रभी नासिकाके अग्रभागमेंरक्खा अर्थात जिन्होनेतत्वज्ञान- निमित्तिक वस्तुको नासाग्रेनिश्चल किया वहीयोगीहै और अप नेशतजन्मार्जितपापके राशिको दहनकरके विमुक्तहोजाताहै

दक्षिणापिङ्गलानाड़ि वह्निमण्डलगोचरा ॥

देवयानमितिज्ञेया पुन्यकर्मानुसारिणी ॥ ११ ॥

देहके दक्षिनभागमें पुन्यकर्मानुसारिणी और सूर्यमंडल प्राप्त जो पिंगलानाम्नीनाड़ी है उसीको देवयान अर्थात् देवमार्ग जानो

इडाच वामनिःश्वास सोममण्डलगोचरा ॥
पितृयानमितिज्ञेया वाममाश्रित्य तिष्ठती १२

वामनासिकाके द्वाराचन्द्रमण्डल प्राप्त जो नाड़ी है उसीको पिंगलानाड़ी कहते हैं और वही पित्रियान अर्थात पितृमार्ग कहलाती है

गुदस्य पृष्ठभागेस्मिन् विनादण्डस्य देहभृत ॥
दीर्घास्थिमूर्ध्नि पर्यन्तं ब्रह्मदण्डेति कथ्यते १३
तस्यान्तेसुषिरंसूक्ष्मं ब्रह्मनाडीतिसूरिभिः १४

पृष्ठभागमें गुदा अर्थात मूलाधारसे मस्तक पर्यन्त जो दीर्घास्थि अर्थात दण्ड है उसके भीतर सूक्ष्म एक छिद्र है उसी छिद्र के भीतर जो ब्रह्मदण्ड अर्थात् ब्रह्मनाड़ी है उसी नाड़ी को सुषुम्ना नाड़ी कहते हैं सुषुम्नाही से ब्रह्मकी प्राप्ती होती है ॥ १३ ॥ १४ ॥

इडापिंगलयोर्मध्ये सुषुम्ना सूक्ष्मरूपिणी ॥
सर्वंप्रतिष्ठितं यस्मिन् सर्वगं सर्वतोमुखम् ॥ १५ ॥

इड़ा और पिंगला इन दोनो नाड़ी के मध्य मे सुषुम्ना नाड़ी सूक्ष्मरूपी है और यह नाड़ी सर्वव्यापी विश्वतोमुख और सर्वात्मक जो ब्रह्मजोति है उसीसे प्रतिष्ठित है अर्थात इसी सुषुम्नाके द्वारा ब्रह्मकी प्राप्ति होती है ॥ १५ ॥ ॐ ॥ ॥

तस्यमध्येगताः सूर्य्य सोमाग्नि परमेश्वरा ॥
भूतलोकाः दिशः क्षेत्र समुद्राः सर्वताः शिला ॥
द्विपाश्चनिम्नगावेदाः शास्त्रविद्याकुलक्षराः ।

स्वरमन्त्रपुराणानि गुणाश्चैतानि सर्वंगः॥
बीजजीवात्मकन्तेषां क्षेत्रज्ञः प्राणवायवः ॥
सुषुम्नान्तर्गतं विश्वं तस्मिन्सर्वप्रतिष्ठितम् १६

इससुषुम्नानाडीकेमध्यसूर्य्यऔरचन्द्रमाऔरअग्निऔरप रमेश्वरयहचारोदेवहैंऔरपंचभूतचतुर्दशभुवनदशोदिशाऔ रवाराणसीआदिधर्मक्षेत्रऔरलवणादिसप्तसमुद्रऔरसुमे रुआदिमहापर्वतऔरयज्ञादि,जम्बुआदिसप्तद्वीपऔरगंगा दिसप्तनदीऔरनदऔरऋग्वादिचारोवेदऔरमीमांसादिष ट्शास्त्रविद्याऔरअठारहोपुराणऔरककारादिचौवीसवर्ण औरअकारादिसोलहोस्वरवर्णऔरगायत्रीआदिमंत्रवर्गऔ रसत्वरजतमयहतीनोगुणऔरमहदादिवीजात्मकजीवऔ रप्राणादिपञ्चवायुऔरनागादिपंचवायुयहसबसुषुम्नानाडी केमध्यहैंइसहेतुसेइसीसुषुम्नानाड़ीकोसमस्तजगतजानना हिये

नानानाडीप्रसवगंसर्वभूतान्तरात्मनी ॥
उर्ध्वमूलमधः शाखं वायुमार्गेनसर्वगं १७

संपूर्णप्राणियोंकेअन्तरात्माअर्थातनानादेहसेनानानाड़ीके उत्पतीकास्थानजोसूत्रहैउसकेउर्ध्वमूलमेंब्रह्महैऔरअधः साखामेंहिरण्यगर्भादिहैंइसीकारणप्राणादिवायुमार्गकेद्वारा सर्वव्यापीहोतेहैं॥ १७ ॥ १७ ॥

द्विसप्ततिसहस्त्राणी नाड्यःस्युर्वायुगोचराः।
कर्ममार्गेणसुषिरास्तिर्य्यञ्चसुषिरात्मिका१८

वायुकेअनुकूलवहत्तरहजारनाडीहैंइसीकारणवायुमार्गद्वा रापुनरावृत्तिप्रापककर्मरूपछिद्रविशिष्टहोतीहैंइसीकारण वहसंपूर्णनाड़ियांतीर्य्यग्गतिरन्ध्रप्रधानहोतीहैं॥ १८ ॥

अधश्चोर्ध्वगनास्तास्तु नवद्वाराणिरोधयन् ॥
वायुनासहजीवोर्ध्व ज्ञानीमोक्षमवाप्नुयात् १९

अधोभागसेउर्ध्वभागनकजोयहबहत्तरसहस्त्रनाड़ीनन्मध्ये अतिसूक्ष्मा औरसुप्रसन्नानाड़ीहैसोइन्हींकेलयद्वारकोप्राणायामाभ्यासकेद्वारारोधकरकेजीवकोसुषुम्नामार्गमेंलेजाकरवायुकानाशकरकेऊर्ध्वज्ञानी अर्थात्ब्रह्म परस्त्रज्ञानीहोकरमोक्ष अर्थात्ब्रह्मैककोलाभकरतेहैं ॥ १९ ॥ ॥

अमरावतींद्रलोकेस्मिन्नासाग्रेपूर्वतोदिशि।
अग्निलोकोह्यथज्ञेय श्चक्षुस्तेजोवतीपुरी२०

इससुषुम्नानाडीकेपूर्वदिशानासिकाकेअग्रभागमेंअमरावतीनामकइन्द्रलोकहैऔरदक्षिणनेत्रजोतेजोवतीनामकपुरीस्वरूपहैसोईअग्निलोकहै॥ २० ॥ ७ ॥

याम्यांसंयमनीश्रोत्रे यमलोकःप्रतिष्ठितः॥
नैरृतोह्यथतत्पार्श्वे नैरृतोलोकआश्रितः२१

दक्षिणकरणमेसंयमनीनामकयमलोकहै औरदक्षिणकरणकेसमीपनैरृतदेवतासम्बन्धी नैरृताख्यलोकहै ॥ २१ ॥

विभावरीप्रतीच्यान्तु पृष्ठेवारुणिकीपुरी ॥
वायोर्गन्धवतीकर्ण पार्श्वेलोकःप्रतिष्ठितः२२

पश्चिमदिशाकेपश्चात्भागमेवरुणसम्बन्धीविभावरीनामकवरुणकीपुरीहै औरवामकरणकेसमीपगन्धवतीनामकवायुलोकप्रतिष्ठितहै॥ २२ ॥ ७ ॥ ॥

सौम्यांपुष्पवतीसौम्या सोमलोकस्तुकण्ठतः।
वामकर्णेतुविज्ञेया देहमाश्रित्यतिष्ठती २३॥

उत्तरदिशामें कण्ठदेशसे वामकरणनक वामदेहके आश्रयकरके कुवेरसम्बन्धी पुष्पवती नामक सोमलोक है ॥ २३ ॥

वामच स्कूषिचे ईशानी शिवलोको मनोन्मनी ।
मूर्ध्नि ब्रह्मपुरी ज्ञेया ब्रह्माण्डं देहसंश्रितं ॥ २४ ॥

वामनेत्रमें ईशानसंवन्धी मनोन्मनी नामक शिवलोक है और मस्तकमें ब्रह्मपुरी नामक ब्रह्मलोक है और ब्रह्मांड इस जगन ज्ञात देहके आश्रित है ॥ २४ ॥ ७ ॥

पादादधः स्थितोनन्तः कालाग्निः प्रलयात्मकः
अनामयमधश्चोर्ध्वं मध्यमन्तर्वहिः शिवं २५

प्रलयकालमें कालाग्न्यात्मक जो अनन्त अर्थात कालाग्निरूप शिव है सो पादमें है और वही शिव अधोदेश, मध्य, ऊर्ध, अन्तर और वहिरदेशमें शिवजनक मङ्गलात्मक और अनामय होते हैं।

अधः पादेऽतलं विद्यात्पादञ्च वितलं विदुः ॥
नितलं पादसन्धिन्तु सुतलं जंघ उच्यते ॥ २६ ॥

पादके अधोभागको अतल और पादको वितल और गुल्फ स्थानको नितल और जंघदेशको सुतल जानना चाहिये ॥ २६ ॥

महातलं हि जानुः स्यात् ऊरूदेशे रसातलः ॥
कटिस्तलातलं प्रोक्तं सप्तपाताल संज्ञया ॥ २७ ॥

जानुदेशको महातल और ऊरूदेशको रसातल और कटिदेशको तलातल जानना इसी प्रकारसे सप्त पाताल संज्ञा द्वारा शरीरबद्ध है ॥ २७ ॥ २७ ॥ ७ ॥ ॥

कालाग्निनरकं घोरं महापातालसंज्ञया ॥
पातालं नाम्यधोभागे भोगीन्द्रफणिमंडलम् २८

वेष्टितः सर्वतोऽनन्तः सविम्भज्जीवसंज्ञकः २८

कालाग्निकीनाईघोरनरक और भोगीन्द्रवोसामान्यसर्पका स्थान जो महापाताल है सो नाभीके अधोभागमें पाताल के नामसे कथित है और जीवसंज्ञावान जो अनन्त है सो वह कुंडलाकार होकर सर्वशरीरमें वेष्टित है ॥ २८ ॥ ७ ॥

भूर्लोकं नाभिदेशेतु भुवर्लोकन्तु कुक्षितः ॥
हृदयं स्वर्गलोकन्तु सूर्य्यादिग्रहतारकम् २६

नाभिस्थानमें भूर्लोक और कुक्षिदेशमें भुवर्लोक और हृदयमें सूर्यादिग्रहगण और तारागणयुक्त स्वर्गलोक है ॥ २६ ॥

सूर्यसोमसुनक्षत्रम् बुधशुक्रकुजाङ्गिराः ॥
मन्दश्चसप्तमोह्येषो ध्रुवोऽन्तः सर्वलोकतः ॥
हृदये कल्पयेद्योगी तस्मिन सर्वसुखं लभेत् ३०

योगीगण अपने हृदयमें सूर्यलोक और चन्द्रलोक और नक्षत्रलोक और बुधलोक और शुक्रलोक और कुजलोक और मंदलोक इनसप्तलोक और ध्रुवलोक को कल्पना करते हैं और उसी अपने हृदयमें कल्पना के कारण संपूर्णसुखको लाभ करते हैं

हृदयेऽस्यमहर्लोकं जनलोकन्तु कंठतः ॥
तपोलोकम्भ्रुवोर्मध्ये मूर्ध्निसत्यंप्रतिष्ठितं ॥३१॥

इसप्रकार के योगियोंके हृदयमें महर्लोक और कण्ठमें जनलोक और भ्रूमध्येतपोलोक और मस्तकमें सत्यलोक प्रतिष्ठित है ३१

ब्रह्मांडरूपिणी पृथ्वी तोयमध्ये विलीयते ॥
अग्निनापच्यते तत्वं वायुनाग्रस्यतेनलः ३२
आकाशस्तुपिवेद्वायुं मन आकाशमेवच ॥

बुध्यहंकारचित्तञ्च सेवब्रह्मपरमात्मनी ३३
अहंब्रह्मेतिमाध्यायेदेकाग्रमनसाकृतम् ॥
सर्वंन्तरंतिपाप्मानं कल्पकोटिशतैःकृतम् ॥३४॥

ब्रह्मांडरूपीपृथ्वीजलमध्येलीनहोतीहै औरवहजलअग्निमें औरअग्निवायुमे औरवायुआकाशमें औरआकाशमनमें औरमनबुद्धिमें औरबुद्धि अहंकारमें औरअहंकारचित्तमें औरचित्तपरमात्मामेंलीनहोजाताहै इसीप्रकारयोगाभ्यासकेद्वाराएकब्रह्मकोजान्नेवालापुरुषकल्पकोटिकृतपापकोनाशकरदेताहै श्रीकृष्णभगवानकहतेहैं किहेअर्जुनइसप्रकारकेयोगीलोगमुझीकोजोमैंब्रह्मरूपीहूं एकाग्रमानसकरकेध्यानकरतेहीकल्पकोटिपापकेराशिसेछूटजातेहैं ॥३२॥३३॥३४॥

घटसंवृतमाकाशं लीयमानंयथाघटे ॥
घटेनष्टेमहाकाशं तद्वज्जीवःपरात्मनी ३५

घटसम्बन्धीआकाशजोघटमेंलीनहैसोघटकेनाशहोनेपर जैसेवहआकाशमहाकाशमेंलयहोजाताहैउसीप्रकारदेहमेंलीयमानजोजीवहैसोदेहकेनष्टहोनेसेपरमात्मामेंलयहोजाताहै॥ ३५ ॥ ० ॥ ० ॥

घटाकाशमिवात्मानं विलयंवेत्तितत्वतः ॥
सगच्छतिनिरालम्बं ज्ञानालोकन्नसंशयः३६

घटाकाशकीनाईजिसनेयथार्थतारूपसेजीवात्माकोपरमात्मामेंलयकियावहीनिःसंगब्रह्मऔरप्रकाशात्मतत्वकोप्राप्तहुआहै पार्थयहनिश्चैकरकेजानोइसमेंकुछसंशयनहींकरनाचाहिये॥ ३६ ॥ ० ॥ ० ॥

तपेद्वर्षसहस्राणी एकपादस्थितोनरः ॥

एकस्यध्यानयोगस्य कलानार्हन्तिषोडशीं ॥
ब्रह्महत्यासहस्राणी भ्रूणहत्याशतानिच ॥
एकोहिध्यानयोगश्च दहत्याग्निरिवेन्धनं ॥
आलोच्यचतुरोवेदा न्धर्मशास्त्राणिसर्वदा ॥
योहंब्रह्मनजानाती दर्वीपाकरसंयथा ॥३७॥
यथाखरश्चन्दनभारवाही भारस्यवेत्तानतुचन्द
नस्य ॥ नथैवशास्त्राणिबहून्यधीत्यसारन्न
जानंखरवत्त्वहेत्सः ॥ ३८ ॥ ७ ॥

मनुष्यजोएकपदसेखड़ेहोकरसहस्त्रवर्षपर्यन्ततपस्याकरैं
तोभीइसकाफलवहउसध्यानयोगके षोडशकलामेंसेएकक
लाकेफलकेतुल्यनहींहोता औरजैसेअग्निकाष्ठराशिकोद
ग्धकरदेतीहैउसीतरहयहध्यानयोगसहस्त्रसहस्त्रब्रह्महत्या
पातक औरशतशतभ्रूणहत्या अर्थात् गर्भपतनहत्याकोभ
स्मकरदेताहै औरजोमनुष्यसदाचारोवेद औरधर्मशास्त्रादि
कोआलोचनाकरतारहताहे किन्तुसच्चिदात्माकोनहीजान्ने
सक्तातोउसकाशास्त्राध्ययन औरजैसेगर्धवचन्दनकाभारवा
हीकेवलबोझलेजानेवालाहोताहैवहचन्दनकेसारसुगन्ध
कोकुछभीनहींजानता उसीप्रकारवहमनुष्यजोशास्त्राध्या
यीहोकरब्रह्मकोनहीपहचानतावहखरवतहै ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

अनन्तकर्मशौचञ्च तपोयज्ञस्तथैवच ॥
तीर्थयात्रादिगमनं यावत्तत्त्वनविन्दती ॥३९॥

जबतकतत्वज्ञानलाभनहींहोता तबतक अनेकप्रकारकाक
र्म औरशौचादि औरतपस्यावोयज्ञवोतीर्थादिगमनकरनाचा
हिये ॥ ३९ ॥ ७ ॥ ७ ॥

स्वयमुच्चलितेदेहे अहंब्रह्मत्वसंशयी ॥ ॥

चतुर्वेदधरोविप्रः सूक्ष्मं ब्रह्मन विन्दती ॥ ४० ॥
शरीरसेस्वयंमुक्तलित और अहंब्रह्म अर्थात हमी ब्रह्म हैं इसप्र
कार के विज्ञान में जिसब्राह्मणको संशय है वह यदि चतुर्वेदज्ञभी
होतो भी वह ज्ञान को लाभ नहीं कर सक्ता ॥ ४० ॥ ॥

गवामनेकवर्णानां क्षीरस्यादेकवर्णतः ॥
क्षीरवद्दृश्यतेज्ञान देहानाञ्च गवांयथा ४१

जैसे अनेक वर्ण की जो गऊ हैं उनमें सबका दुग्ध एकही वर्णका
होना है उसीप्रकार से नानादेह होनेसे भी आत्मा सबमें एकही
जानना चाहिये ॥ ४१ ॥ ॥ ॥

आहारनिद्राभयमैथुनञ्च सामान्यमेतत्पशुभि
र्नराणां ॥ ज्ञानंनराणामधिकं विशेषोज्ञानेनही
नाः पशुभिः समानः ॥ प्रातर्मूत्रपुरीषाभ्यां मध्या
न्हे क्षुत्पिपासया ॥ तृप्ताः कामेनवाध्यन्ते चान्ते
वानिशिनिद्रया ४२ नादविन्दुसहस्राणि जीव
कोटिशतानि च ॥ सर्वञ्च भस्मनिर्धूतं यत्र देवा
निरञ्जन ४३ अहंब्रह्मेतिनियतंमोक्षहेतुर्महा
त्मनाम् ॥ ४४ ॥ ॥ ॥

अहार निद्रा और भय और मैथुन यह चारो जैसे मनुष्यों में हैं
वैसेही पशुओं में भी हैं किन्तु एक तत्वज्ञान जो मनुष्यों में है सो
पशुओं में नहीं है इस हेतु जिस मनुष्य में तत्वज्ञान नहीं है उसे
पशुसमान जानना चाहिये और जैसे मनुष्य प्रातःकाल को म
लमूत्र त्याग करके मध्यान्हकाल में क्षुत पिपासित होकर भो
जनादिक द्वारा तृप्त होकर काम अर्थात मैथुनाभिलाषी हो
ताहु आ नतपश्चात निद्रावित होजाहै उसी प्रकार से पशु-
गण भी होते हैं और जिसमें शत२ जीवकोटि और नादविंदु
सहस्र२ भस्मसात होते हैं वही निरंजन अर्थात स्वप्रकाश देव
है सो हे अर्जुन इस प्रकार के ब्रह्म हमी हैं और जिस महात्मा को

इसप्रकारकानिश्चितज्ञानहुआहोउसीकोमोक्षकासंबन्धीजा
नाचाहिये॥ ४२॥ ४३॥ ४४॥ ७॥

द्वेपदेबन्धमोक्षाय निर्ममेतिममेतिच॥
ममेतिबध्यतेजन्तु र्निर्ममेतिविमुच्यते ४५

ममेतिअर्थातहमाराहैऔरनिर्ममेतिअर्थातअहंकारसेरहि
तहोनायहीदोनोपदबन्धनऔरमोक्षकेकारणहैऔरनिर्म
मेतिसेमोक्षप्राप्तहोतीहै॥ ४५॥ ७॥

मनसोह्युन्मनीभावात् द्वैतंनैवोपलभ्यते॥
यदायात्युन्मनीभावंतदातत्परमंपदम् ४६

मनसेअहंकारकेत्यागहोनेपरद्वैतताकाज्ञाननहीरहताति-
दानजबअहंकाररहितहोताहैतबपरमपदजोमोक्षहैउसको
पाताहै॥ ४६॥ ७॥

हन्यान्मुष्टिभिराकाशं क्षुधार्तःकुन्तुयेतुषम्॥
नाहंब्रह्मेतिजानाति तस्यमुक्तिर्नविद्यते ४७

जिसनेवेदान्तशास्त्रादिकोअध्ययनकियाकिन्तुयहज्ञानकी
हमीब्रह्महैंप्राप्तनहीहुआउसकाशास्त्राध्ययननिष्फलहुआ
औरमुक्तिकोकदापिनहीपाताजैसेआकाशमेंमुष्टिप्रहार
करनाकेवलकरभंगकरकेदुःखभागीहोताहैऔरक्षुधार्थी
यदिचावलकेआशासेधानकीभूसीकोकूटेतोक्याउसको
तंडुलअर्थातचावललाभहोगाअर्थाततुषाघातसेकदापि
तंडुलनहीमिलताउसीप्रकारकेवलशास्त्राध्ययनहीसेमुक्ति
पदकदापिनहीमिलती॥ ४७॥ ॥

इतिश्रीब्रह्मांडपुराणेश्रीमदुत्तरगीतायांसुबोधेऽनुवादेद्वितीयोऽध्या-

श्रीभगवानउवाच

अनन्तशास्त्रंवहुवेदितव्यंस्वल्पश्चकालोवहव
श्चविघ्ना॥ यत्सारभूततदुपासितव्यंहंसोयथा
क्षीरमिवाम्बुमिश्रम्॥ १॥ ॥

श्रीभगवानकहतेहैंकिशास्त्रोंकाअन्तनहींहैयदिकोईबहुका
लशास्त्रोंकाअध्ययनकरैतोभीउसकेतात्पर्यकेजानेमेंअनेकका
लकाविलम्बहोताहै औरमनुष्योंकासमयअतिअल्पहैउसमें
भीअनेकप्रकारकेविघ्नहोतेहैंइसनिमित्तहेकहतेहैंकियह
जोसंपूर्णशास्त्रोंकासारभूतहैसोइसीकीउपासनाहंसवतक
रनाचाहिये जैसेहंसकिजलमिश्रितदुग्धमेंसेजलकोत्याग
करकेकेवलदुग्धकोग्रहणकरताहै॥ १ ॥ ॥

पुराणंभारतंवेदाः शास्त्राणिविविधानिच।
पुत्रदारादिसंसारो योगाभ्यासस्यविघ्नकृत् २

पुराणऔरभारतऔरवेदआदिविविधप्रकारकेशास्त्रओ
पुत्रओस्त्रीइत्यादिप्रभृतिरूपजोयहसंसारहैसोसमस्तयोगा
भ्यासकेविघ्नकरताहैं॥ २ ॥ २ ॥

इदंज्ञानमिदंज्ञेयं यत्सर्वंज्ञातुमिच्छसी ॥
अपिवर्षसहस्रायुः शास्त्रान्तन्नाधिगच्छसी ३

हेअर्जुनयदितुमयहइच्छाकरोकिज्ञानयेहै औरज्ञेयवहहै
हमयहसबसंपूर्णजानेतोसहस्रवर्षकीआयुहोनेसेभीशास्त्र
काअन्तनहींपावोगे॥ ३ ॥ ३ ॥

विज्ञेयोऽक्षरसन्मात्रो जिवितञ्चापिचञ्चलम्
विहायसर्वशास्त्राणि यत्सत्यंतदुपास्यताम् ४

इसीनिमित्तसर्वशास्त्रकोत्यागकरकेसन्मात्रअर्थातसत्मा
त्रऔरअविनाशीजोआत्माहैउसकोजानोऔरइसजीवित
कोअतिचंचलजानकरवैराग्यकेअर्थसत्यपरमात्माकीउपास
नाकरोयहीसंपूर्णशास्त्रोंकासारहै।।वैराग्यकाअर्थयहनहीं
हैकिघरवारछोड़देशपरदेशओरजङ्गलपहाडोमेंभटकता
फिरनावरञ्चसबमेंरहकरसंपूर्णसंसारीवस्तुओंसेनिर्मोहऔ
रविरक्तरहनेकोत्यागऔरवैराग्यकहतेहैं जैसेराजाजनकइ
त्यादिये॥ ४ ॥ ४ ॥ ॥

पृथिव्यां यानि भूतानि जिह्वोपस्थनिमित्तकम्
जिह्वोपस्थपरित्यागे पृथिव्यां किं प्रयोजनं ५

पृथ्वी की जितनी वस्तु हैं उन को जिह्वा और उपस्थ यही दो ना ग्राह्य और त्याग करते रहते हैं सो जब जिह्वा और उपस्थ त्याग किया तो पृथिवी का क्या प्रयोजन रहा निदान जब पृथ्वी का कुछ प्रयोजन न रहा तो आप ही आप वैराग्य का उदय हुआ ॥ ५ ॥

तीर्थानि तोयरूपाणि देवान पाषाणमृणमयान्
योगिनो न प्रपद्यन्ते आत्मध्यानपरायणाः ६

आत्मध्यानपरायणी योगी लोग जलरूपी तीर्थ और पाषाण वो मृत्तिका आदि रूपी देवता के निकट जाते नहीं और न उनको अर्चना वन्दन करते ॥ ६ ॥ ६ ॥

अग्निर्देवो द्विजातीनां मुनिनां हृदि दैवतम् ॥
प्रतिमा स्वल्पबुद्धीनां सर्वत्र समदर्शिनाम् ७

द्विजाती अर्थात् कर्मकाण्डपरायणी ब्रह्मणों के निकट अग्नि देवता है और मुनियो अर्थात् मननशील व्यक्ति वालों के निकट-हृदयकमल के मध्य स्थित देवता है और सामान्य बुद्धि वालों के निकट प्रतिमा ही देवता है और सर्वत्र समदर्शी महायोगियों के निकट इस श्रुति के अनुसार (सर्वं ब्रह्मेति) अर्थात सर्वात्मक औ सरवत्र जो ब्रह्म है सोई देवता है ॥ ७ ॥ ७ ॥

सर्वत्रावस्थितं शान्तं न प्रपश्येज्जनार्दनम् ॥
ज्ञानचक्षुर्विहीनत्वा दन्धः सूर्यमिवोदितं ८

जैसे अन्धव्यक्ति वाले सूर्य को उदय होते हुए नहीं देख सक्ते उसी प्रकार अज्ञानी जो ज्ञानचक्षु विहीन हैं सर्वत्र परिपूर्ण और शांत जो जनार्दन है उसको नहीं देख सके निदान संपूर्ण मनुष्यों को उचित है कि समदर्शी योगी होने की इच्छा समन को शुद्ध करें तो ज्ञान का चक्षु खुलैगा ॥ ८ ॥ ८ ॥

यत्र यत्र मनो याती तत्र तत्र परं पदम् ॥